पहला अध्याय

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व

साहित्य सृजन का, सृजनकार के व्यक्तित्व से किनारा करके मूल्यांकन संभव नहीं है| वैसे ही व्यक्तित्व को परिवेश एवं अर्जित संस्कारों से भी पृथक नहीं किया जा सकता| अर्थात किसी भी साहित्यिक कृति को रचनाकार की वैयक्तिक छाप से रहित नहीं माना जा सकता| रचनाकार का वैयक्तिक जीवन, यदि सीधे रूप में उनके साहित्य पर नहीं पड़ता है, तो भी परोक्ष रूप में उनकी रचनाओं पर अवश्य पड़ता है| आलोच्य रचनाकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं पर भी उनके व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है| अतः हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य का अध्ययन करने के लिए उपर्युक्त दृष्टि से उनके व्यक्तित्व का अध्ययन तर्कसंगत है|

आचार्य हज़ारी प्रसार द्विवेदी हिन्दी साहित्य जगत के सफल रचनाकार हैं| उनका व्यक्तित्व, अन्य रचनाकारों से बिलकुल भिन्न है| उनका चिंतन, उनकी सोच-विचार, साहित्य के प्रति उनका दृष्टिकोण आदि उनके अलग व्यक्तित्व को प्रतिफलित करनेलायक हैं| समाज तथा साहित्य के प्रति उनका यह अलग दृष्टिकोण ही उनकी रचनाओं को दूसरों से अलग कर देता है|

जन्म एवं शिक्षा

संस्कृत साहित्य के अध्येता, हिन्दी साहित्य के गौरव और भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक द्विवेदी जी का जन्म सन् 1907 में हुआ था| उत्तरप्रदेश के बुलिया जनपद के आरत दुबे का छपरा नामक गाँव में,सामान्य, लेकिन प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ था| द्विवेदी के पिता अनमोल द्विवेदी और माता ज्योतिषमती थे| द्विवेदी को उन्होंने बहुत प्यार से देखभाल किया था| किसी एक मुकदमे की उलझन के समय उनके पिता को एक हज़ार रूपये की प्राप्ति हुई| इसी कारण अनमोल द्विवेदी ने अपने पुत्र को हज़ारी प्रसाद नाम रखा|

द्विवेदी का प्रारंभिकजीवन कठिनाइयों से भरा था| गाँव के अकृत्रिम वातावरण में जन्म लेने के कारण ही उनके व्यक्तित्व में सरलता, निरछलता और परदुःख कातरता की झलक देखा जा सकता है| द्विवेदी के परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी| उनका संपूर्ण छात्र-जीवन अर्थ संकट से जूझते हुए बीता, पर उन्होंने कभी भी थकना, निराश होना नहीं जाना| वे अपनी वीरता से सारे संकटों को पार करते रहे और विजयी भी हुए| श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को उन्होंने अपनी आर्थिक विपत्ति के बारे में लिखा था| – "थोडी अंग्रेजी सीखकर और एडमीशन परीक्षा उत्तीर्ण करके, बड़े उत्साह से मैं हिन्दू विश्वविद्यालय के सेंट्रल कॉलेज में पढ़ने गए| मेरे घर की आर्थिक व्यवस्था की बात न कहना ही उचित है| मुझे याद आता है कि पिताजी ने बड़ी कठिनाई के बाद गाँव के एक व्यक्ति से चालीस रूपये उद्धार लिए थे| यह मेरी इंटरमिडियट की भर्ती की प्रथम बलि थी| मैं उसके बाद केवल क्लास में बैठता और फीस नहीं देता था| संस्कृत कॉलेज से पन्द्रह रूपये वृत्ति मिलती थी और पाँच रुपये का एक ट्यूशन करता था| कुछ खाता था और कुछ बचाकर घर भेज देता था| घर की दशा बहुत दयनीय थी|"[1]

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की प्रारंभिक शिक्षा रैपुरा गाँव के प्राईमरी स्कूल में हुई थी| उन्होंने बसरिकापुर गाँव के मिडिल स्कूल से सन् 1920 में मिडिल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में वे काशी आ गए| उनके चाचा ने उन्हें लघु सिद्धांत कौमुदी रटा दी थी| वे रामचरित मानस का भी पाठ किया करते थे| उन्होंने कच्ची उम्र में उपनिषदों और महाभारत की हिन्दी टीकाओं को पढ़ा था| उनके चाचाजी, द्विवेदी को बचपन में ही भारत-भारती और जयद्रथ-वध कंठस्थ करा दिया था| उनके पिता श्री अनमोल द्विवेदी उन्हें ज्योतिषी और वकील बनाने के इच्छुक थे| ज्योतिषी संभवतः इसलिए कि उन्हें अपने

[1] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, हरिशंकर शर्मा, पृ : 11-12

पितामह श्री आरत दुबे के समय की ज्योतिष के द्वारा आर्जित संपत्ति-ख्याति की वापसी की थी|

हज़ारी प्रसद द्विवेदी की संस्कृत शिक्षा पहले जन्म-ग्राम के निकट स्थित 'पराशर आश्रम' में प्रारंभ करा दी गई थी| बाद में रणवीर संस्कृत पाठशाला, काशी से उन्होंने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की थी| सन् 1929 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से साहित्याचार्या की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् 1930 में ज्योतिषाचार्य की| द्विवेदी को सबसे अधिक कठिनाई अंग्रजी अध्ययन में हुई थी| आर्थिक संकीर्णता के कारण वे अंग्रेजी की पढाई को नियमित बनाये नहीं रख सके|

वैवाहिक जीवन

लगभग बीस वर्ष की उम्र में द्विवेदी का वैवाहिक जीवन प्रारंभ हुआ| सन् 1927 में श्रीमती भगवती देवी आपके जीवन में प्रवेश किया| वे अत्यंत साध्वी, पति-परायण तथा सौम्य स्वभाव की नारी थी| इनके चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं| आचार्यजी का पारिवारिक जीवन सुखद रहा| उनके परिवार का वातावरण, उनकी साहित्यिक साधनों में सदैव सहायक सिद्ध होता रहा है| दिसंबर 1979 में श्रीमती भगवती देवी की मृत्यु हुई|

व्यक्तित्व के विभन्न पहलु

स्कूल कॉलेज की शिक्षा समाप्त करके द्विवेदी शान्तिनिकेतन में हिन्दी शिक्षक हो गए| यहाँ के वातावरण में उनके चित्त की उदारता का विपुल विकास हुआ| अध्ययन-चिंतन लेखन में वे निरंतर निमग्न रहे| यहीं उनका संस्कार हुआ| उनके जीवन में चरित्र-निर्माण में और ज्ञान वर्धन में इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान है| उन्होंने सुमनजी को लिखे हुए पत्र में व्यक्त किया है| "माँ-बाप की कृपा से थोडा पढ़ गया और पढ़ भी क्या गया? न हिन्दी, न संस्कृत, न अंग्रेज़ी, न ज्ञान, न विज्ञान|

सौभाग्यवश महापुरुषों के दर्शन हो गए| मैं ने अपना आदर्श अच्छा चुना था और भगवान की कृपा से अच्छे आदमियों के बीच पहुँच गया|"[2]

द्विवेदी को अनेक महापुरुषों का, विद्वानों का तथा संतों का आशीर्वाद पाने का सुअवसर प्राप्त हुआ| इनमें से गाँधीजी, मालवीय, टैगोर मुख्य हैं| प्रसिद्ध पत्रकार और हिन्दी विद्वान् श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का संपर्क और अनुकंपा उन्हें प्राप्त हो रही थी| वे चतुर्वेदी को अपना साहित्य गुरु मानते थे| शान्तिनिकेतन के शान्त, प्राकृतिक और भावना संपन्न वातावरण में उनके जीवन के बीस वर्ष का महत्वपूर्ण समय व्यतीत हुआ था| यह समय उनके ज्ञान-यज्ञ का, संयम साधना का, तप-त्याग का समय था| द्विवेदी अपना दूसरा जन्म शान्तिनिकेतन पहुँचने के दिन को मानते हैं| (1930 नवंबर 7 को वे शान्तिनिकेतन पहुँचे) इस वातावरण में रहकर वे सही अर्थ में सन्त हो गये| द्विवेदी की शांति, धीरता तथा शीलता उनके आत्म-शोधन का, शिक्षा का और संस्कारों का सुपरिणाम है|

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृत के विद्वान् तथा हिंदी के कुशल शिक्षक, प्रभावी लेखक और आलोचक थे| वे सन् 1930 में हिंदी शिक्षक के पद पर, शान्तिनिकेतन में नियुक्त हुए थे| बाद में उन्होंने शिक्षा विभाग के अनेक पदों को भूषित किया| उनकी समप्राप्तियों के संबंध में कहा गया है कि उन्हें जो कुछ प्राप्त हुआ, अथक श्रम साधना के बाद ही मिला, वरन उनकी उपलब्धियाँ, उनके श्रम और योग्यता की तुलना में कम ही थी| वे विभागाध्यक्ष, रैक्टर, आदि प्रशासनिक पदों पर कार्यरत रहे, किन्तु उनका शिक्षक कभी सुप्त नहीं हुआ| उन्हें शिक्षक कार्य में आत्मिक आनंद आता था| वे वास्तव में ऋषि परम्परा के त्यागी व्यक्ति थे, पदलिप्सा उनमें नहीं थी|

[2] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, हरिशंकर शर्मा, पृ : 14

उनका प्रथम और सर्वाधिक महत्व का पद शान्तिनिकेतन में हिंदी शिक्षक का था| यहाँ उन्हें टैगोर का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था| शान्तिनिकेतन का शिक्षक पद पाना आचार्य द्विवेदी के लिए एक सुयोग और संयोग था| सन् 1930 से 1950 तक वे शान्तिनिकेतन में हिंदी शिक्षक रहे|

सन् 1950 में उनकी नियुक्ति बनारस विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफसर और विभागाध्यक्ष के पद पर हुई| 1960-1967 में वे पंजाब विश्वविद्यलय, चण्डीगढ़ में हिंदी के प्रोफसर और विभागाध्यक्ष बने| सन् 1967 के बाद पुनः काशी लौट आये जहाँ कुछ समय तक रेक्टर के पद पर कार्य किया| जीवन के अंतिम दिनों में वे उत्तर प्रदेश हिंदी संस्था के उपाध्यक्ष पद पर आसीन थे| सन् 1955 में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा राजभाषा आयोग का सदस्य घोषित किया गया| सन् 1945 से 1950 तक वे हिंदी भवन विश्वभारती के संचालक रहे और विश्वभारती विश्वविद्यालय की एक्सिक्यूटिव कौन्सिल के सदस्य रहे| सन् 1950-53 में साहित्य अकादमी दिल्ली की साधारण सभा और प्रबंध समिति के सदस्य, नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलेखों की खोज तथा अकादमी से प्रकाशित नेशनल बिब्लियाग्रफी के निरीक्षक सन् 1954 में रहे|

लखनऊ विश्वविद्यालय ने द्विवेदी को सन् 1949 में उनकी रचना 'कबीर' पर डिलीट की मानद उपाधि से भूषित किया| सन् 1957 में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया| सन् 1962 में पश्चिम बंगाल साहित्य अकादमी द्वारा टैगोर पुरस्कार से सम्मनित किया गया तथा सन् 1973 के केन्द्रीय साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ| उनके विषय में डा. राजमल बोरा का कथन 'अपने जीवन में उन्होंने जो भी पाया है', अपनी योग्यता के अनुपात से कम ही पाया है"[3] पूर्णतया सत्य है|

[3] आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, राजमल बोरा, पृ : 24

बाल्यावस्था के 'बैजनाथ', शान्तिनिकेतन के 'द्विवेदी' बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के 'पण्डितजी', पंजाब विश्वविद्यालय के 'आचार्यजी', और शिष्यों के 'गुरुदेव' डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य विधा के अमोल रत्न थे| उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था| वह मानवतावादी विचारधारा के सर्वश्रेष्ठ समीक्षक, साहित्येतिहास के शोधकर्ता एवं व्याख्याता, भारतीय संसकृति के प्राणवान संदेश वाहक, अप्रतिम कथा-शिल्पि, सिद्ध संपादक, सहज साधक, भाषा लालित्य के प्रतिष्ठापक, मर्मी कवि, कुशल वाग्मी और सफल अध्यापक थे| उनके व्यक्तित्व की विराटता शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता|

सफल साहित्यकार के रूप में आचार्य द्विवेदी जी की प्रतिष्ठा आज बहुचर्चित है| परन्तु ज्योतिष-विधा के पण्डित ज्योतिषाचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का नाम अज्ञात एवं अप्रसिद्ध है| इसे बहुत कम लोग जानते हैं| ज्योतिष विद्या आचार्यजी को पैतृक परम्परा से प्राप्त है| उनके पिता तथा ज्योतिष विद्या गुरु की यह प्रबल इच्छा थी कि आचार्याजी या तो बहुत बड़े ज्योतिषी बने या फिर एक प्रतिष्ठित वकील| काशी में रहकर उन्होंने ज्योतिष विषय की शास्त्री और आचार्य परीक्षायें पास की| ज्योतिषाचार्य शिक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् परिवार की विषम परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए कुछ दिनों तक कलकत्ते में रहकर एक गटर पर रखी चौकी पर जमकर बैठते और कुंडलियाँ देखा करते थे| यही नहीं शान्तिनिकेतन में अध्ययन करते हुए द्विवेदी ने प्रच्छन्न नाम से अपनी ज्योतिष विद्या गुरु पं.रामदयाल ओझा के कुछ मतों का खंडन करते हुए एक लेख लिखा था| यह लेख लोगों को पसन्द आया और इन्हें इसी विषय पर आयोजित सम्मलेन की निर्णायक समिति ने बंगाल प्रांत के प्रतिनिधि के रूप में चुना|

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी असीम मानवीय गुणों, औदार्य, विवेक, करुणा, संयमादी से अलंकृत होने के साथ-साथ मानवता के महान पूजक थे| एक स्थान पर

वे अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं – "जहाँ औदार्य है, विवेक है, करुणा है, संयम है, मनुष्यता वहीं है, किंतु जो मनोभाव इसके विपरीत जाते हैं, उनकी दृष्टि में मनुष्यता नहीं हो सकती है|"[4]

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी एक सफल वाग्मी हैं| गहन से गहन विषय को अत्यंत सहजता के साथ प्रस्तुत करने की अपूर्व शक्ति उनमे थी| वे बड़ी से बड़ी बात को व्यंग्य परिहास के साथ पानी में घुली हुई गुड की भाँती न किसी आयास के गले उतार देने में पूर्ण कुशल थे| डॉ. प्रभाकर माचवे लिखते हैं कि "द्विवेदी जी के यहाँ पता ही नहीं चलता था क्या भाषण में और क्या लेखन में कि विद्वता कहाँ है, सहजता कहाँ है|"[5]

आचार्य द्विवेदी विचारशील और सिद्धांतवादी व्यक्ति थे| प्रत्येक विषय पर उनके निर्णय सुचिंतित और स्पष्ट हुआ करते थे| साहित्य, धर्म, देश-प्रेम, राजनीति आदि किसी भी क्षेत्र में उनके विचार में द्वंद्व या अन्तर्विरोध नहीं था| वे मानवता के पूजारी थे| उनका साहित्य मानव-महिमा का, मानवोत्थान का लेख है और उसकी प्रगति का साधना भी| मनुष्यता तथा मानव-प्रेम उनकी दृष्टि में बड़ी चीज़ है| उनके साथ जिन लोगों ने बुरा से बुरा व्यवहार किया, उनके व्यक्तित्व पर कीचड़ डाला, उनकी जीविका पर लाट मारी, उनके विकास सारे काँटों से रुंधे, उनके विरोध में कुछ करना तो दूर, कुछ कहने का भी उन्होंने प्रयत्न नहीं किया| काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से विदा होते समय जाँच समिति के अध्यक्ष के बार-बार पूछने पर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा|

[4] द्विवेदी ग्रंथावली, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 46

[5] सांस्कृतिक आलोचना और हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, प्रो. किशोर शर्मा, पृ : 63

आचार्य द्विवेदी जी सच्चे देश-भक्त व्यक्ति थे| उन्होंने श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को भेजे एक पत्र में इस बात पर दुःख प्रकट किया था कि – "यह कैसा अंधेर है कि अपने देश के विषय में भी हमें अंग्रेज़ी के लिखी पुस्तकें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना पड़े|"[6] उन्होंने देश को सम्पन्न संस्कृति का गान किया है| वे देश के विघटन की संभावना मात्र से व्यथित हो जाते है| उन्होंने सन् 1967 में अपने प्रिय छात्र शिव प्रसाद सिंह को लिखे पत्र में "आशंका हो रही है कि देश की खण्ड-खण्ड न हो जाये| देश कहीं वियतनाम के रास्ते तो नहीं जा रहा है|"[7] द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्टिनी के माध्यम से देश की एकता और संगठन के कार्य के प्रयास का वर्णन किया है| 'चारुचन्द्र लेख' में शतवाहन के चक्रवर्तित्व की चंद्रलेखा की कामना और तदनुकूल प्रेरणा में आचार्य द्विवेदी का देशप्रेम अंतर्निहित है| पुनर्नवा का आर्यक समुद्रगुप्त राष्ट्रीय एकता अभियान का आधार स्तंभ है| हिन्दी भाषा से द्विवेदी को बहुत लगाव था| यद्यपि वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा नहीं, मातृभाषा कहने में गर्व का अनुभव करते थे| वे हिन्दी के प्रभाव को, महत्व को स्वीकार करते हुए उसे उत्तरोत्तर शक्ति-सम्पन्न बनाने की लालसा रखते थे| वे हिन्दी को हास और अश्रु, प्रेम और शेष, भक्ति और श्रद्धा की रूप देनेवाली भाषा मानते थे| वे विदेशी भाषा के विरोधी नहीं थे, वरन् उनके वर्चस्व के विरोधी थे| उन्होंने भाषा नीति आलोचना करते हुए लिखा है – "अभी तक देश के प्रभावशाली लोगों ने हिन्दी को मन से स्वीकार नहीं किया है, ऐसा लगता है| .... एक दिन तीसरे विश्व की भाषा के रूप में हिन्दी आनेवाली है, आ रही है|"[8]

[6] साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ : 4

[7] हिन्दी तथा अन्य भाषाएँ, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 37

[8] हिन्दी तथा अन्य भाषाएँ, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 41

धर्म के विषय में द्विवेदी जी की स्पष्ट मान्यता है कि धर्म वह है जिससे मानव का अत्यधिक कल्याण हो| उन्हें किसी संप्रदाय विशेष से घृणा नहीं थी और न वे किसी संप्रदाय के अन्धानुयायी थे| उन्होंने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्टिनी के माध्यम से इस्लाम की सरल समाज-व्यवस्था की प्रशंसा की है| वे स्वयं भागवत धर्मानुयायी थे और श्रीकृष्णावतार के परम भक्त| 'पुनर्नवा' में तपस्विनी के माध्यम से उन्होंने इस मान्यता को प्रकट किया है|

राजनीति के क्षेत्र में श्री द्विवेदी इन्द्रिरागाँधी के प्रति सम्मान भाव रखते और लोहिया जी के नाम पर मुँह बिचकते है| परन्तु प्रजातंत्र के वर्तमान स्वरूप से वे संतुष्ट नहीं थे| राजनीति के द्वारा धर्म को दबा देने के कारण वे क्षुब्ध थे| उन्होंने सन् 1969 में पं.द्वारिकाप्रसाद मिश्र को एक पत्र में लिखा था – "प्रजातंत्र का जो रूप हमारे सामने आ रहे है, सचमुच क्या वही है जिसके लिए पिछली पीढ़ी ने संघर्ष किया था?..... राजनीति के

इसी प्रकार के कर्म को अब दुष्कर्म नहीं माना जाता|"[9]

निष्पक्षता और न्यायप्रियता आचार्य के सिद्धांत थे| वे निर्णय लेने के पूर्व पर्याप्त विचार करते थे परन्तु निर्णय लेने के बाद अडिग-अटल रहना उनका सिद्धांत था| उन्होंने श्री. बनारसी दास चतुर्वेदी को एक व्यक्तिगत पत्र में लिखा – "निर्णायक के आसन बैठकर, मैं किसी भी व्यक्ति के प्रति संकोच और पक्षपात को पाप मानता हूँ|"[10] त्याग को वे श्रेष्ठ मानव गुण मानते हैं| दलित द्राक्षा की भांति निचोड़कर सबके लिए निछावर करके परमप्रेयान्त को समर्पित हो जाना ही मनुष्य-धर्म है, यह उनकी दृढ़ धारणा है| निष्पक्ष और निस्वार्थ भावना को वे महत्वपूर्ण मानव-गुण

[9] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, पृ : 22

[10] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, पृ : 12

मानते हैं| अपने आपको दलितद्राक्षा की भांति निचोड़कर सबके लिए निछावर नहीं कर दिया जाता, तब तक स्वार्थ खण्ड सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता है, तृष्णा को उत्पन्न करता है और मनुष्य को दयनीय तथा कृपण बनाता है| निर्भयता उनका मूल-मंत्र है, अविरोध उनका मानव-प्रेम, और ईश्वर भक्ति तथा गुरुदेव द्वारा लिखित 'शाबार ऊपरे मनुष्य, सत्य ताहार उपरे नाई' उनका जीवन दर्शन है|

आचार्य द्विवेदी का बाह्य व्यक्तित्व अत्यंत सरल और सहज-प्राप्य था| उनका वेश और रूप उनके अंतर को पूर्णतया प्रकट कर देता था| उनका जीवन खुली पुस्तक थी| वे युवावस्था से ही खादी धारण करते थे| वे जीवन से अधिक प्रेम करनेवाले हैं| ज्ञान और अनुभव के लिए उन्हें भूख है| सुई से लेकर सोष्यलिसम तक सभी वस्तुओं का अनुसन्धान करने के लिए उत्सुक रहते हैं| श्री.मनोहरश्याम जोशी ने उनके व्यक्ति चित्र का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया है – "द्विवेदी जी ज्योतिषाचार्य, धर्मशास्त्री, साहित्यज्ञ, इतिहास, सम्पादक, प्राध्यापक, शोधकर्ता, चिर जिज्ञासु सबकुछ हैं और ये सब उनकी बातचीत से झलकता रहता हैं|"[11] रविन्द्रनाथ टैगोर उन्हें विद्वान् मानते थे| कविवर रामधारी सिंह दिनकर ने उनके व्यक्तित्व के विषय में लिखा है कि विद्वान् और लेखक, वे आज बे-जोड़ है, किन्तु मनुष्यता की दृष्टि से भी उनके समकक्ष पहुँचाने वाले लोग देश में कम होंगे| बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके व्यक्तित्व का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है – "जितने बढ़िया वह साहित्यक थे, उससे कहीं आगे बढ़कर सहृदय मनुष्य थे|"[12] यही सहृदयता या मानव-प्रेम द्विवेदी के व्यक्तित्व को महानता देनेवाली विशेषता है|

[11] साप्ताहिक हिन्दुस्तान, श्री मनोहरश्याम जोशी, पृ : 2

[12] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, बनारसी दास चतुर्वेदी, पृ : 23

प्रेरणाश्रोत

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के विराट व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाली अनेक महान शक्तियाँ हैं| उनके जीवन और उनकी विचारधारा को प्रभावित करनेवाले महापुरुषों में मुख्यतः महामानव रविन्द्रनाथ टैगोर, पण्डित मदन मोहर मालवीय, आचार्य क्षितिज मोहन सेन, कलाविद विधुशेखर भट्टाचार्य, पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी, महाकवि कालिदास, बाणभट, कबीरदास एवं तुलसीदास हैं| इन्हीं महापुरुषों ने आचार्य द्विवेदी के बहुआयामी साहित्य सृजन और विकासशील प्रतिभा को निखारने के मूल में रहकर अनुकूल जलवायु प्रदान की| साथ ही शान्तिनिकेतन के साहित्यक संस्कृति एवं कलात्मक वातावरण के समन्वित प्रभावों ने उचित योगदान देकर एक ज्योतिषाचार्य को इस युग के श्रेष्ठ साहित्य स्रष्टा के रूप में प्रतिष्ठित किया|

विश्वकवि रविन्द्र नाथ टैगोर, आचार्य द्विवेदी को बहुत प्रभावित किये| द्विवेदीजी के मानवतावाद के मूल में महाकवि रवीन्द्र जी ही रहे हैं| परिणामतः आपका समग्र साहित्य पथ इसी धरातल पर निर्मित हुआ है| वे अपने जीवन का मार्गदर्शक 'शान्तिनिकेतन' आगमन तथा गुरुदेव 'टैगोर' को मानते हैं| उन्होंने पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा था कि "मेरे जीवन की सबसे बड़ी घटना, शान्तिनिकेतन में गुरुदेव का दर्शन पाना है| न जाने किस पूर्व पुण्य फल से मुझे यह सौभाग्य मिला| दर्शन पा सकना ही परम पुण्य का फल है परन्तु मुझे तो स्नेह मिला था| बाद में गुरुवर के दर्शन मिले| भगीरथी की निर्मल जलधारा के समान उस प्रेमिल महापुरुष का सान्निध्य कितना आह्लाद करता था, इस बात को वही जान सकता है जिसने कभी उस रस का अनुभव किया हो|"[13] यह उनके जीवन की शुभ घडी ही रही होंगी जब उन्हें गुरुदेव का स्नेहपूर्ण सान्निध्य मिला होगा|

[13] साप्ताहिक हिन्दुस्थान, पृ : 10

संभवतः गुरुदेव के गहरे प्रभाव के कारण ही वे 1930 6, 7, 8, नवंबर को अपने 'द्विजत्व प्राप्ति की तिथियाँ' मानकर प्रतिवर्ष हर्षोल्लास के साथ उत्सव मनाकर, उस युग में राजर्षि गुरुदेव के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करते रहे हैं| द्विवेदी को गुरुदेव से सबसे बड़ा गुरुमंत्र मिला था – "जेथा तुच्छ आचारेर मरुबालुराशी विचारेर स्रोतपथ फेले नाइ ग्रासी, पोरुशेरे करेनी शतधा" (जहाँ तुच्छ आचार की बालू का ढेर, विचार के स्रोत पथ को निगलकर पौरुष के टुकड़े-टुकड़े न कर दे)|[14] उनका सारा कृतित्व इसी मूल मंत्र पर आधारित है| आचार्य द्विवेदी ने 'क्यों और क्यों नहीं' स्तम्भ के अंतर्गत पूछे गये एक प्रश्न – "रवीन्द्रनाथ के सान्निध्य में आप काफी समय तक रहे हैं| आपका लेखन और जीवन दर्शन उनसे कहाँ तक प्रभावित हुआ है? – इसके उत्तर में उन्होंने लिखा – 'बहुत प्रभावित हुआ हूँ| संक्षेप में क्या लिखूँ'|[15] आचार्य द्विवेदी की सृजनात्मक शक्ति को प्रभावित करने में शान्तिनिकेतन के बारह वर्षों का गुरुदेव का संपर्क एवं उनकी जीवन दृष्टि ही है| आचार्यजी उनके प्रभाव को स्वीकार करते हुए 'मृत्युंजय रवीन्द्र' की भूमिका में एक स्थान पर लिखते हैं कि "उनके निकट रहने वालों को सदा यह अनुभव होता था कि वह अधिक परिष्कृत और अधिक बड़ा होकर लौट रहा है| बड़ा आदमी वह होता है जिसके संपर्क में आनेवाले का अपना देवत्व जाग उठता है|"[16] रवीन्द्र के संपर्क से उनका देवत्व तो जागृत हुआ ही, साथ ही साथ उनकी रचनात्मकता ने उनके पांडित्य को गलाकर सहज बना दिया है|

कुछ विद्वान् समालोचकों ने द्विवेदी की साहित्यिक रचनाशीलता पर रवीन्द्रीकरण का आरोप लगाया है| डॉ. कमलेश्वर' अपने निबंध में इस ओर संकेत

[14] आलोचना, डा. शिवमंगल सुमन का लेख, पृ : 92

[15] प्रश्नों के घेरे, संपादक राजेन्द्र अवस्ती, पृ : 35

[16] मृत्युंजय रवीन्द्र, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी (भूमिका) पृ : 3

करते हुए लिखते है – "जब भी वह कुछ सोचते,बोलते या लिखते हैं तो कुछ ही देर में वह रवीन्द्रनाथ की भाषा में सोचने, बोलने या लिखने लगते हैं|"[17] यह सच है कि द्विवेदी पर टैगोर का गहरा प्रभाव पड़ा है परन्तु एक का व्यक्तित्व कभी भी दूसरे के व्यक्तित्व के साँचे में नहीं ढल सकता है| यह कविवर रवीन्द्र के व्यक्तित्व ने आचार्य द्विवेदी की विचारधारा को सर्वाधिक प्रभावित किया है|

पण्डित मदन मोहन मालवीय का भी द्विवेदी जी पर गहरा असर पड़ा था| जब कभी आचार्य द्विवेदी भीतर-भीतर थकन अनुभव करते तब उन्हें मालवीय जी द्वारा प्रसाद रूप में किया गया महाभारत का कुछ अंश याद आते – (जागो, व्यथाहीनचित्त से सतत कल्याण कार्यों में जुटे रहो और मानकर चलो कि वे पूर्ण होंगे ही|) उनकी धारणा है कि यदि इस मंत्र को भारतीय युवक जीवन में उतार ले तो कौन उनके रास्ते में रोड़ा अटका सकता है| मालवीय जी के अनुसार सबकी उन्नति ही वास्तविक नीति हो सकती है| द्विवेदी के जीवन पर इस बात की गहरी छाप पड़ी थी| द्विवेदी अपने जीवनकाल में अनेक बार दूसरों द्वारा अपमान तथा मानसिक उत्पीडन का अनुभव करता था| उनकी उदारता और सहजता के मूल में उन्मुक्त अनुभव ही रही है| उनकी विचार धारा पण्डित मदन मोहन मालवीय जी से अवश्य प्रभावित हुई है|

शान्तिनिकेतन का अनुकूल वातावरण, गुरुदेव का सान्निध्य, मालवीय जी की सहजता की भांति आचार्य क्षितिज मोहन सेन की सन्त परम्परा ने भी द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रभावित किया है| डॉ. शिवमंगल सुमन ने अपने एक लेख में लिखा है कि आचार्य क्षितिजमोहन सेन द्विवेदी को अपना मानस पुत्र मानते थे| शान्तिनिकेतन में जब मैं द्विवेदीजी के साथ उनसे मिलने गया तो संतकवियों की

[17] आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डा. कमलेश्वर, पृ : 132

जीवित परम्परा पर चर्चा करते-करते उदास भाव से कहने लगे कि इस कार्य को नई पीढ़ी महत्व नहीं दे रही है, कहीं यह मेरे साथ ही समाप्त न हो जाय| फिर बड़े स्नेह से द्विवेदी जी की पीठ थपथपाते हुए बोले कि हज़ारी प्रसाद ही उसे पूरा करेंगे|' गुरुदेव और क्षितिज मोहन सेन के प्यार-दुलार ने द्विवेदी जी का कायाकल्प कर दिया| आचार्य द्विवेदी ने सन्त साहित्य की जो पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की है, उसके मूल में आचार्य सेन द्वारा प्रस्तुत सन्त परम्परा के अध्ययन और उनकी विचारधारा ही है|

पण्डित बनारसदास चतुर्वेदी के व्यक्तित्व और विचारधारा का प्रभाव आचार्य द्विवेदी पर लक्षित होता है| पण्डित जी 'विशाल भारत' के संपादक थे| आचार्य द्विवेदी पंडितजी को अपना साहित्यिक गुरु मानते थे| द्विवेदी ने लिखा है कि मेरे साहित्य गुरु अनेक है, पर जिनकी एक चिट्टी ने मेरे अन्दर एक अपूर्व जीवनी शक्ति भर दि थी, उनको मैं क्या कहूँ? उन दिनों मैं अज्ञात – अख्यात लेखक था| रवीन्द्रनाथ की कविताओं पर लेख लिखकर 'विशाल भारत' में छपने को भेजा था, तो मुझे एक पत्र मिला कि – आज हमारे जैसे बहुतेरों को पीछे छोड़ गये है| यह पत्र मिलते ही एक नई शक्ति का अनुभव हुआ| आचार्य द्विवेदी ने पंडितजी को अपना साहित्यिक गुरु तो माना ही, साथ ही साथ उनके पत्र के एक-एक शब्द को प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार किया है|

इसी प्रकार कलाविद् विधुशेखर भट्टाचार्य के प्रभाव के कारण ही आप चित्रकला में रूचि लेते थे| महाकवि कालिदास के सौन्दर्य बोध, मस्तमौला कबीर के फक्कडपन, बाण भट्ट की समाजसेवा भावना, एवं तुलसीदास की समन्वयशीलता आदि की विशिष्टताओं से आचार्य द्विवेदी के बहुआयामी व्यक्तित्व को निखारते हुए उनकी विचारधारा पर गहराई से प्रभाव डाला है| उसकी विचारधारा पूर्ण रूप से मानवतावादी रही है| उनकी समाजशास्त्रिय और सांस्कृतिक धारणाएँ उनके समग्र

साहित्य को प्रभावित करती रही है| द्विवेदी असीम मानवीय गुणों औदार्य, विवेक, करुणा, संयम आदि से अलंकृत होने के साथ ही साथ मानवता के महान पूजक थे|

डॉ. द्विवेदी ने आदर्शवाद के धरातल पर परस्पर विरोधी विचारधाराओं, परम्परा तथा आधुनिकता, संस्कृति और सभ्यता, समाज और व्यक्ति, धर्म तथा विज्ञानं आदि में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है| द्विवेदी के व्यक्तित्व में औदार्यपूर्ण समग्र भाव-चेतना का पूर्ण परिपाक दिखाई देते हैं| उन्नत कुल जात होकर भी वे जाति-पांति के विचारों से मुक्त थे| जिस युग में द्विवेदी के व्यक्तित्व का विकास हुआ, उसे राष्ट्रीय दृष्टि से 'गाँधीयुग' कह सकते हैं| वे गाँधी के व्यक्तित्व एवं दर्शन से बहुत प्रभावित थे| उनका जीवन दर्शन परम्परागत रुढियों एवं अन्धविश्वासों पर आधारित नहीं थे, उन्होंने विज्ञान की नवीनतम स्थापनाओं के आधार पर चिंतन को प्रतिष्ठित किया है|

आचार्य के माता-पिता की भक्ति-भावना तथा पारिवारिक संस्कारों के अनुरूप उनकी सरलता और विनम्रता ने उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है| उनके जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि इसी विशेषता पर निर्भर करती है| वे सादगी के अवतार थे| उनकी सहज सरलता टैगोर के मानवतावाद तथा आचार्य क्षितिज मोहन सेन की सन्त परम्परा से प्रभावित थी| वे जितना देखने में सरल और विनम्र लगते थे उतना ही वे विचारों में भी सरल थे| गंभीर विषय को वे आत्मसात करके, उसे सरलतम रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण दक्ष थे| अपने पांडित्य की गरिमा को अक्षुण रखते हुए उसके सरलीकृत रूप को सभी के लिए अर्पित करना उनके जीवन का परम लक्ष्य था| विनोदप्रियता उनके व्यक्तित्व की और एक विशेषता है| दुःख में रोते रहना वे पसंद नहीं करते थे| उनका विश्वास हैं कि 'दुःख तो केवल मन का विकल्प है, अपने को निःशेषता से दे देने में ही सच्चा आनंद है, जीवन की सार्थकता है| इस प्रकार उनका विराट व्यक्तित्व उस विशाल

वटवृक्ष की भांति बहु आयामी था, जो अतीत की गहराईयों से 'रस' खींचकर आज के मुक्त आकाश में साँस लेता है|

कृतित्व

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य विपुल, विविध और विशिष्ट है| उनके अनुसार साहित्य का मुख्य उद्देश्य सहज भाषा में ऊँचे विचारों और श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को अनायास ग्राह्य बनाना है| उन्होंने कविता, साहित्येतिहास, निबंध, उपन्यास और आलोचना क्षेत्र में ही नहीं, जीवनी, सम्पादन और अनुवाद के क्षेत्र में भी कार्य किया है| वे सच्चे अर्थ में कृति और सुकृति व्यक्ति हैं| उनका साहित्य विपुल होकर भी गंभीर है| द्विवेदी ने संस्कृति, इतिहास, समाजशास्त्र, मानव-विज्ञान आदि विविध विषयों पर गवेषणात्मक तथा आलोचनात्मक लेख लिखे हैं, यदि एक ओर धर्म-चक्र, मानव-सत्य, संकीर्णता, भाषा-समस्या, जनता का अन्तःस्पंदन, आदि विषयों पर लेख लिखे हैं तो दूसरी और साहित्य का मर्म, साहित्य में मौलिकता का प्रश्न, साहित्य की नवीन मान्यताएँ, संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा आदि साहित्यिक विषयों पर भी गंभीर तथा साहित्यिक लेख प्रस्तुत किये है|

आचार्य जी की मान्यता हैं कि किसी रचना का संपूर्ण आनंद पाने के लिए रचयिता के साथ हमारा घनिष्ठ परिचय और सहानुभूति मनुष्यता के नाते भी आवश्यक है| हमें आलोचक होने के पहले आलोच्य ग्रन्थकार का विश्वसयोग्य मित्र बनना चाहिए| इसके अभाव में हम उसके प्रति सुख-दुःख की अनुभूति का भाव नहीं रख सकते तथा उसका सही मूल्यांकन हम नहीं कर सकते हैं| आचार्य द्विवेदी की दृष्टि कविता के संदर्भ में सदैव काव्यालोचना पर रही है| आचार्य रामचंद्रशुक्ल की 'बिम्ब ग्रहण' की मान्यता को द्विवेदी जी ने कवि का पहला एवं अनिवार्य कर्तव्य माना है| यही कारण है कि अपनी समीक्षा-दृष्टि में आपने उस तत्व पर भी पैनी दृष्टि

रखी है| द्विवेदीजी काव्यालोचन कवि के जीवन एवं उससे जुडी परम्परा के परिप्रेक्ष्य में करते थे| इसमें उसका पाण्डित्य कभी भी बाधक बनकर नहीं आया, अपितु साधक ही सिद्ध हुआ है|

आचार्य द्विवेदी की स्पष्ट धारणा थी कि वही साहित्य वास्तविक साहित्य कहा जा सकता है जो मनुष्य की पाश्विक वृत्तियों को तरल एवं उसकी जमी हुई अन्तःसरिता को प्रवाहमान कर सके, तथा उसकी संवेदनशीलता को उभार कर 'सहानुभूति' और 'स्नेहार्द्रता' को जागृत कर सके| इसी संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि "जो साहित्यकार अपने जीवन में मानव-सहानुभूति से परिपूर्ण नहीं है, और जीवन के विभिन्न स्तरों को स्नेहार्द, दृष्टि से नहीं देख सका है, वह बड़े साहित्य की सृष्टि नहीं कर सकता|"[18] जहाँ तक साहित्य के प्रयोजन का प्रश्न है आचार्य द्विवेदी ने मनुष्य को ही साहित्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित किया है| यहाँ तक कि काव्य के प्रसंग में भी यही दृष्टि सामने रखते थे| उन्होंने लिखा है कि "मनुष्य को देवता बनाना ही काव्य का सबसे बड़ा उद्देश्य है| मनुष्य को उसकी स्वार्थ बुद्धि से ऊपर उठाना, उसके इहलोक की संकीर्णताओं से उपर उठाकर सत्वगुण में प्रतिष्ठित करना, परदुखकातर और संवेदनशील बनाना और निखिल जगत के भीतर चिरस्तब्ध एक अनुभूति के द्वारा प्राणिमात्र के साथ आत्मीयता का अनुभव कराना ही साहित्य का काम है|"[19] आचार्य द्विवेदी साहित्य के प्रति अपनी दृढ़ मान्यता स्थिर करते हुए कहते है कि जो साहित्य हमें एकत्व की अनुभूति की ओर उन्मुख करेगा, हमें पशु सामान्य मनोवृतियों से ऊपर उठाकर प्रेम और मंगलमय मनुष्य धर्म में प्रतिष्ठित करेगा, वही वस्तुतः साहित्य कहलाने का अधिकारी होगा|

[18] भारतीय साहित्य का मेरुदंड, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 41

[19] भारतीय साहित्य का मेरुदंड, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 42

निबंध

द्विवेदी के निबंध विधा में प्रवेश के साथ निबंध लेखन को बहुआयामी विकास मिला| आचार्य शुक्ल ने निबंध को जो विशिष्ट स्वरूप दिया उसका विकसित और परिपक्व रूप है द्विवेदी का निबंध| आचार्य ने ललित व आलोचनात्मक निबंध लेखन में अपनी निपुणता दिखाई है| दोनों ही प्रकार के निबंधों में उनके विरत ज्ञान का सरस रूप देखने को मिलता है| पाण्डित्य के बोझ से रहित द्विवेदी के निबंध पढ़ते हुए प्रायः पाठक, लेखक के साथ सामीप्य-भाव का अनुभव करता है| कभी पाठक द्विवेदी की मोहक वर्णन शैली के दृश्यों का दर्शक बन जाता है| "जहाँ बैठके यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे-पीछे, दायें-बायें, शिरीष के अनेक पेड़ है| जेठजी जलती धूप में जबकि धरित्रि निर्धूम अग्निकुण्ड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था|"[20] इसी प्रकार अनेक स्थलों पर पाठक लेखक का सहगामी, सहयात्री बन जाता है| कभी लेखक के विवेच्य स्थल का निरीक्षक बन जाता है तो कभी आचार्य का सिर हिलाकर सहमती देनेवाला समर्थक बन जाता है| इस संबंध में द्विवेदी के ललित निबंध विशेष रूप से दृष्टव्य है|

सन् 1951 में 'कल्पलता' निबंध संग्रह का प्रकाशन हो गया था और उसके पश्चात उनकी लेखनी से 1964 में 'कुटज' निबंध संग्रह प्रकाशित हुआ| 'शिरीष के फूल', 'आम फिर बौरा गए', 'नाखून क्यों बढ़ते है?', 'भगवान महाकाल का कुण्डनृत्य', 'ठाकुरजी की बटोर', 'संस्कृतियों का संगम', 'धर्मस्य तत्वं निहित गुहायां' आदि 'कल्पलता' के निबंध हैं| 'कुटज' में 'देवदारू', 'आत्मदान का संदेशवाहक वसन्त', 'जीवन शरत शतम्', 'दीपावली-सामाजिक मंगलेच्छा का प्रतिमापर्व', 'वैशाली', 'भारत की ऐक्य-साधना साहित्य के क्षेत्र में', 'भारतीय संस्कृति का

[20] शिरीष के फूल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ :

स्वरूप', 'मानव धर्म', 'धार्मिक एवं सच्चरित्र नारी कुडंब की शोभा है' आदि प्रमुख हैं| 1948 में प्रकाशित 'अशोक के फूल' निबंध संग्रह में 'वसन्त आ गया', 'नया वर्ष आ गया है', 'मेरी जन्म भूमी', 'घर जोड़ने की माया', भारतीय फलित ज्योतिष', 'भारतीय संस्कृति की देन', 'पुरानी पोथियाँ', 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या', प्रयाश्चित की घड़ी' आदि निहित है| 1959 में प्रकाशित विचार प्रवाह का प्रमुख निबंध है 'वर्षा-धनपति से घनश्याम तक'| द्विवेदी की 'सभ्यता और संस्कृति' नामक निबंध संग्रह का प्रमुख निबंध हैं 'सौन्दर्य सृष्टि में प्रकृति की सहायता', सभ्यता, 'सभ्यता और संस्कृति', 'संस्कृति और साहित्य', 'कला का प्रयोजन' और 'भारतीय साहित्य का मेरुदण्ड'| 1954 में प्रकाशित विचार और वितर्क निबंध संग्रह का एक प्रमुख निबंध है हिन्दू संस्कृति के अध्ययन के उपादान|

1972 में आचार्य द्विवेदीजी का निबंध संग्रह 'आलोक पर्व' प्रकाशित हुई| उनमें 'प्राचीन भारत में मदनोत्सव', 'आलोक पर्व की ज्योतिर्मय देवी', 'अन्धकार से जूझना है', 'व्योमकेश शास्त्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी', 'प्राचीन ज्योतिष ज्योतिर्विज्ञान', 'हिमालय', 'भारतीय संस्कृति और हिंदी का प्राचीन साहित्य', 'पूर्वी एशिया के तीर्थयात्रियों का स्वागत', 'मध्यम मार्ग', 'स्वागत', 'भारत की समन्वय साधना-धर्म और दर्शन के क्षेत्र में', 'तिलक का गीता दर्शन' आदि आते हैं|

'देवदारु' निबंध में आचार्य द्विवेदी भारतीय संस्कृति को ज़ोर से पकड़ता है, लेकिन अशोक के फूल में आकर वे अपनी शंका प्रकट करते हैं कि आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे है क्या वह ऐसी ही बनी रहेगी?[21] 'कुटज' निबंध में कुटज भारतीय संस्कृति का प्रतीक है| वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भी भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश देकर नहीं फिरता, दूसरों को अपमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं

[21] अशोक के फूल, ग्रंथावली 9, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 24

करता, जीता है तो शान से जीता है|[22] इन पंक्तियों में द्विवेदीजी का स्वाभिमान व्यक्त है|

'आम फिर बौरा गए' में द्विवेदी कहते है कि पुराने इतिहास में दृष्टि डाले तो वर्तमान इतिहास निराशाजनक नहीं मालूम होता है|[23] वसन्त अ गया है, आत्मादान का संदेश वाहक वसन्त, प्राचीन भारत में मदनोत्सव आदि निबंधो के द्वारा निबंधकार ने बताया है कि भारत उत्सवों का देश है| 'मेरी जन्मभूमि' में द्विवेदी की समाज कल्याण की भावना व्यक्त है| वे लिखते हैं – "जब हमारी संपूर्ण जनता साहसपूर्ण, धर्मानुकूल कर्म करती हुई सौ वर्ष का जीवन पाने की इच्छा करेगी और उसके चरित्र बल को दुर्बल बनानेवाली सामजिक शक्तियाँ क्षीण हो जायेंगी, तब हमारा नैतिक धरातल ऊँचा होगा| तभी समग्र देश का मंगल होगा और हमारे देशवासी केवल कर्ममय जीवन ही नहीं यापन करेंगे, वे सारे जगत को इस प्रकार के जीवन की और उद्‌बुद्ध करेंगे|[24]

'नाखून क्यों बढ़ते है' निबंध में द्विवेदी पूछते हैं कि मनुष्य किस ओर जा रहा है, पशुता की और या मनुष्यता की ओर, वे उपदेश देते हैं कि मनुष्य के अन्दर अनेक ऐसे आदत है जो हमारे विवेक को क्षीण करता है| नाखून की तरह यदि इन बुरे भाव बढ़ता जा रहा है तो उसे काट देना चाहिए| जिस प्रकार नाखून काटने से हमारे हाथ का सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी तरह हमारे मन के बुरे भावों को दूर करने से हम में मनुष्यता आ जायेगी|"[25]

[22] कुटज, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 33

[23] आम फिर बौरा गए, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 46

[24] नाख़ून क्यों बढता है, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली 9, पृ : 64

[25] मेरी जन्मभूमि, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली 9, पृ : 110

'जिन्दगी और मौत के दस्तावेज में' मृत्यु की अनिवार्यता पर द्विवेदी प्रकाश डालते हैं| यक्ष के सवाल के लिए युधिष्ठिर उत्तर देते हैं कि प्रतिदिन लोग मर रहे हैं, फिर भी जो बचे रह जाते हैं, उनमें जीने की इच्छा बराबर बनी रहती है| यही बहुत बड़ा आश्चर्य है|[26] प्राचीन ज्योतिष, ज्योतिर्विज्ञान, भारतीय फलित ज्योतिष आदि निबंधो से निबंधकार के ज्योतिर्विज्ञान का पता हमें मिलते हैं| हिमालय, वैशाली, ठाकुरजी की बटोर, स्वागत आदि निबंध संस्कृति और इतिहास से पुष्ट हैं|

'भीष्म को क्षमा नहीं किया गया' में भीष्म के माध्यम से आचार्य ने उन समस्त बुद्धिजीवीयों के अपराध पर विचार किया है जो निर्णय लेने की परिस्थिति में मौन रह जाते है| द्विवेदी की दृष्टि में ऐसा मौन बुद्धिजीवी, समय पर निर्णय लेने की अक्षमतावाले विद्वान् इतिहास के भयंकर रथचक्र के नीचे पिस जाते है| 'जिन्दगी और मौत के दस्तावेज' में उन्होंने अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए लिखा –

"बनने चला था ज्योतिषी, और बन गया हिंदी का लेखक, जो लिखना चाहा वह नहीं लिखा, अप्रत्याशित रूप से कुछ ऐसा लिख गया जिसकी कल्पना भी मन में नहीं थी|[27]

अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी आचार्य द्विवेदी के कई निबंध प्रकाशित होचुके हैं| बरसों भी (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1973 जुलाई 19), भारत में धृतकीड़ा (सुधाबिंदु, 1974 नवंबर), जिन्दगी और मौत के दस्तावेज (कादाम्बिनी फ़रवरी 1978), बोलो काव्य के मर्मज्ञ (आरती, 1941 मई), भीष्म को क्षमा नहीं किया गया (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1978 जनवरी 19), सर्वकाल नमस्य महामानव (नव भारत टाइम्स

[26] जिन्दगी और मौत के दस्तावेज, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 111

[27] जिन्दगी और मौत का दस्तावेज, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 12

वार्षिकांक – 1975), आत्मजयी भगवान महावीर (हरियाणा संवाद, 1974 नवंबर), वन्देमातरम (संमर्ग, वार्षिकांक 1977) ये सब द्विवेदी के उल्लेखनीय निबंध हैं|

निबंध लेखन में सरसता, धारा प्रवाह और संगठन जैसे तत्वों को आचार्य ने पूरा महत्व दिया है| क्लिष्ट विषय को सरलीकृत करने की उनकी क्षमता के प्रमाण उनके निबंध है| द्ववेदी के निबंध लेखन की कला को शब्द देने के लिए विद्यानिवास मिश्र का यह कथन उपयुक्त है – "द्विवेदी का निबंधकार अशोक के फूल की तरह रागानुकूल, शिरीष की तरह अवधूत, कुटज की तरह बीहड़, मनमौजी और देवदारु की तरह व्योमकेश है| यह वसन्त की अगवानी के लिए सबसे आगे जाने को आतुर है, वह त्रिपुर सुन्दरी के पद-संचार की आकांक्षा में पुलकित होने वाला है, वह निदाध के ताप पर ठठाकर हँसता है, पर हलकी सी दुर्भावना के स्पर्श से कुम्हला जाता है| वह कठोर पाषाण को भेदकर अपना योग्य संग्रह करता है .... परन्तु इसके साथ ही वह चारुस्मित है, वह मेघ के लिए, आत्मदानी के लिए, प्रथम अर्ध्य है, वह मुड़कट्टो को पराभूत करनेवाला हिमालय की गरिमा का साक्षी है, पर अपने व्यक्तित्व को प्रेषणीय बनाने के लाभ में, समझौता करने को तनिक भी प्रस्तुत नही है|"[28]

उपन्यास

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कुल चार उपन्यास की रचना की हैं|

बाणभट्ट की आत्मकथा:- बाणभट्ट की आत्मकथा का प्रकाशन वर्ष 1946 ई. है| इसमें कथाकार ने महाराज हर्षवर्धन के शासनकाल को पृष्ठ भूमि बनाया है और कल्पना का भरपूर प्रयोग करके ऐतिहासिकता को प्रस्तुत किया है| प्रस्तुत उपन्यास आत्मकथा शैली में लिखी गई है| बाणभट्ट की कथा प्रारंभ से ही रहस्य, कुतूहल, जिज्ञासा में इस प्रकार डूब जाती है कि पाठक अंत तक उसके स्वाद में डूबा रह जाता

[28] आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, दृष्टि और सृष्टि, हरिदास व्यास, पृ : 83

है और एक असंग तृप्ति का अनुभव करता है| इस उपन्यास का प्रमुख पात्र बाण भट्ट और निपुणिका है| भट्टिनी, अघोर भैरव, महामाया आदि भी इसके प्रमुख पात्र हैं| इसके कल्पित पात्र भी युगीन समाज, संस्कृति और परिवेश के रंग में ऐसे रंगे मिलते है कि शुद्ध ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं| प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु एक अपहृत नारी तुन्वरर्मिलिंद की कन्या भट्टिनी को मुक्त कराने से सम्बंधित है और उसे पिता को पुनः सौपना है| इस उपन्यास की शैली रोचक है| प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा द्विवेदी ने नारी को देव मंदिर की भावना से सम्मानित कर, नारी के चरित्र को उज्जवल बना दिया है| उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य प्रेम भावना, नारी उद्धार, धर्मनिष्ठा, राष्ट्रीय जागरण और मानवता की प्रतिष्ठा है|

चारुचन्द्रलेख :- प्रस्तुत उपन्यास 1963 में लिखा गया है| चारुचन्द्रलेख में पूर्व मध्यकालीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है| राजा सातवाहन इसका नायक है| रानी चंद्रलेखा एवं मैना अन्य महत्वपूर्ण पात्र हैं| विद्याधर भट्ट, नारी माता, जल्हण, धीर शर्मा और गुरु गोरखनाथ इसके ऐतिहासिक पात्र है| मध्ययुग के तंत्र-मंत्र सिद्धि आदि के अनुसार तत्कालीन इतिहास, संस्कृति, धर्म एवं राजनीति उपन्यास में उभरकर आयी है| तांत्रिक साधनों के साथ मनोवैज्ञानिकता भी जगह जगह दृष्टिगोचर होती है| उपन्यासकार ने इसमें राजा सातवाहन, रानी चंद्रलेखा और मैना को प्रतीकात्मकता देने का प्रयास किया है| ये तीनों इच्छा, ज्ञान और क्रिया के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं| प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी की परम संवेदनशील लेखनी द्वारा बारवीं एवं तेरहवीं शति के भारत के व्यक्ति और समाज का यथार्थ और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण हुआ है|

पुनर्नवा :- प्रस्तुत उपन्यास की रचना सन् 1973 ई. में हुई| इस उपन्यास में तीस अध्याय हैं| एक अध्याय, दूसरे अध्याय से इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि पाठक उपन्यास को छोड़ता ही नहीं| देवरात से संबंधित पहला छः अध्याय अत्यन्त

आकर्षक एवं पाठक को कल्पना जगत में विचरण करानेवाले है| मंजुला और देवरात का मिलन, आर्यक, श्यामरूप और मृणाल का पालन तथा शिक्षा, श्यामारूप का भागकर नट मण्डली में सम्मिलित होना, तथा आर्यक और मृणाल मंजरी का परिणय, कुल मिलकर पुनर्नवा को औपन्यासिक भावभूमि और रोचकता प्रदान करनेवाले घटनाक्रम है| इन अध्यायों की घटनाएँ इतनी सहजता, स्वाभाविकता तथा शालीनता के साथ प्रस्तुत की गई है कि पाठक आगे का अध्ययन केलिए उत्सुक होता जाता है|

अनामदास का पोथा :- 1976 में लिखा गया आचार्यजी का चौथा एवं अंतिम उपन्यास है 'अनामदास का पोथा'| इस उपन्यास में लेखक के जीवनानुभव, गौरव, महिमा, चरित्र, बुद्धि, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक चेतना, दर्शनिक चिंतन, संस्कृति तथा संस्कृत ज्ञान का सार निहित है| उपन्यासकार ने मूल रूप में छांदोग्य और प्रासंगिक रूप से बृहदारण्यक उपनिषदों से बीज लेकर लौकिक युवा-युवती की प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक समझे जानेवाले अध्यात्म की व्यावहारिक व्याख्या का समग्र इतिहास प्रस्तुत किया है| यह उपन्यास प्रेम अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान आदि का अद्‌भुत संगम है| बीस अध्यायों में विभक्त यह उपन्यास छन्दोग्य उपनिषद के कथा सूत्र के सहारे अप्रतिम बुनावट के साथ वेद-वेदांग, योग की ब्रह्मविद्या तथा श्रृंगार, शांत एवं करुण रस से साकार हुआ है| सबका समाहार लोक संग्रह, लोकसेवा और परोपकार की भावना से रत हो जाना है| यह उपन्यास जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करता है| लेखक ने सही अर्थ में लोक जीवन की पीड़ा का साक्षात्कार किया है और उनका मत है कि जिस युग में मनुष्यों का एक विशाल समुदाय अन्न-वस्त्र की पीड़ा में व्याकुल है, रोग-शोक एवं अकाल में तड़प रहा है, उस युग में ब्रह्म की एकांत योग साधना व्यर्थ है| इस प्रकार 'अनामदास का पोथा'

अध्यात्म से भरपूर, काम चेतना के स्वर से झंकृत, लोक कल्याण की भावना को उजागर करनेवाला एक सफल उपन्यास है|

द्विवेदी के चार उपन्यास हिंदी साहित्य के दर्पण के रूप में सामने आते हैं जिसमें नये-नये प्रयोगों के साथ उन्होंने आधुनिक बोध साकार किये है| दीन दुखियों की दीनता का स्वर चारों उपन्यासों से मुखरित हो उठता है| अनेक नैतिक मूल्यों से युक्त ये उपन्यास हिंदी साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखने योग्य हैं|

इतिहास

सन् 1940 में 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के आगमन के साथ ही हिंदी साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय खुल गया| शुक्लजी द्वारा स्थापित मान्यताएँ द्विवेदी ने पहली बार सप्रमाण खण्डित किया| वीरगाथा काल के अधिकांश ग्रन्थ अप्रमाणिक सिद्ध हो रहे थे, भक्तिकाल के कार्य-कारण की शुक्लीय अवधारणा भी द्विवेदी ने नाथ संप्रदाय के आधार पर गलत प्रमाणित की| इसी तरह शुक्लजी द्वारा समस्त जैन साहित्य को धार्मिक रचनाएँ कहकर साहित्य में सम्मिलित न करने को भी द्विवेदी ने अनुचित मानते हुए कहा कि इस तर्क के आधार पर तो भक्तिकालीन कवि तुलसीदास का साहित्य भी असाहित्यिक हो जाएगा|

1950 में 'मध्यकालीन धर्म साधना' में द्विवेदी ने मध्यकाल की व्याख्या करते हुए मूल रूप से मध्यकालीनता और उसके संदर्भ में आधुनिकता की अवधारणाओं पर विचार किया है| मध्यकालीनता की 'जबदी मनोवृत्ति' का उन्होंने विश्लेषण किया है| इसी के परिप्रेक्ष्य में आचार्य ने भक्तिकाल और रीतिकाल को परखा है|

सन् 1950 में नाथों के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व का गहन विवेचन 'नाथ संप्रदाय' में प्रकाशित हुआ| नाथ संप्रदाय के इतिहास और उसके बदलते स्वरूप, साधना का स्वरूप और परवर्ती काल में व्याप्त अनाचार तथा मुख्य नाथों का

विश्लेष्णात्मक अध्ययन नाथ संप्रदाय में हुआ है| 1951 में 'भारतीय वाडमय' तथा 1952 में विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से लिखे इतिहास ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य उत्भव और विकास' प्रकाशित हुए| विद्वानों ने हिंदी साहित्य को द्विवेदी के अनुरूप स्तर का ग्रन्थ नहीं कहा, पर द्विवेदी इस संबंध में पूर्व घोषणा कर चुके थे कि यह ग्रन्थ अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों के लिए हिंदी साहित्य के इतिहास को समझने का सरलीकृत रूप है|

1952 में 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' प्रकाशित हुआ| इस ग्रन्थ में आदिकाल की दोनों सीमाओं, पूर्व और परवर्ती के वातावरण, भाषा-स्वरूप व साहित्य विधा स्वरूप के विचार के साथ आदिकाल के कवियों और साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन है|

सन् 1965 में प्रकाशित 'आधुनिक साहित्य बोध' भी साहित्येतिहास की दृष्टि से उल्लेखनीय है| द्विवेदी ने इतिहास अध्ययन को 'शव साधना' कहा है| पर यही शव साधना 'शिव साध्य' के लिए साधन है, जिसमें साधना के उपरांत शव का मुख्य ऊर्धमुखी हो जाता है| इतिहास के रूखे विवेच्य विषयों को द्विवेदी ने कुछ ऐसी सरसता और स्वाभाविकता से, व्यर्थ के गुरु गांभीर्य के भार से मुक्त होकर विवेचित किया है कि वह सर्जनात्मक स्वरूप हो गया| द्विवेदी ने इतिहास लेखन परम्परा को एक नया स्वरूप प्रदान किया| उन्होंने स्पष्टतः विधेयवादी शुक्ल परम्परा से भिन्न प्रतिज्ञा की है| वे साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों और उसके मूल और वास्तविक स्वरूप का परिचय देना ही अपना लक्ष्य घोषित करते हैं, वे अटकलबाजियों और अप्रासंगिक विवेचनाओं तथा नाम गिनाने की प्रवृत्ति से बचने की भी कोशिश करते हैं| इस प्रकार द्विवेदी अनेकानेक शुक्लोत्तर साहित्येतिहासकारों की तुलना में हिंदी में पहली बार कदाचित समस्त भाषाओं में सबसे पहले शुक्लजी द्वारा प्रवर्तित विधेयवादी साहित्येतिहास से भिन्न साहित्यिक साहित्येतिहास लिखने के श्रेय की अधिकारी सिद्ध होते हैं|

आलोचना

द्विवेदी ने सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही आलोचनाएँ लिखी है|

सैद्धांतिक आलोचना

'कविता', 'उपन्यास और कहानी', 'साहित्य का व्याकरण', 'साहित्य', 'साहित्यकार', 'नाटक', 'साहित्यिक समालोचना', 'निबंध', 'रस क्या है', कथा, आख्यायिका और उपन्यास', 'साहित्य का नया रास्ता' आदि शीर्षक निबंधो से आचार्य ने काव्यशास्त्र पर आधारित सैद्धांतिक आलोचना की है| इस आलोचना में काव्यांगो का स्वरूप निर्णय व् अनेक इतिहास पर विशद् व्याख्या की गई है| अपनी इस आलोचना में आचार्य द्विवेदी ने काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विश्लेषण करते हुए वैज्ञानिक प्रतिमान स्थापित किये हैं'| उन्ही के आधार पर द्विवेदी ने साहित्य की आलोचना की है| आचार्य के लिए साहित्य का पहला उद्देश्य रहा है कि वह सामजिक मानव के हितार्थ हो| द्विवेदी के लिए तो साहित्य का लक्ष्य मनुष्य ही है} उनके अनुसार जो साहित्य मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाये, उसे साहित्य कहना ही गलत होगा| साहित्य को वे सन्तुलित दृष्टि से देखने का प्रयास करते है| 'सन्तुलित दृष्टि' को स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि सन्तुलित दृष्टि वह नहीं है, जो अतिवादियों की आवेग-तरल विचारधारा का शिकार नहीं हो जाती और किसी पक्ष के उस मूल सत्य को पकड सकती है जिस पर बहुत बल देने और प्रभाव बढ़ा है| सन्तुलित दृष्टि सत्यान्वेषी की दृष्टि है|

व्यावहारिक आलोचना

1936 में 'सूर साहित्य', 1942 में 'कबीर', 1963 में 'मृत्युंजय रवीन्द्र' और 1965 में कालिदास की लालित्य योजना नामक व्यावहारिक आलोचना के ग्रंथ प्रकाशित हुए| ये ग्रन्थ व्यावहारिक आलोचना के प्रतिमान के रूप में स्थापित हुए|

अपने साहित्यिक निष्कर्षों, अवधारणाओं को प्रतिमानों के रूप में स्थापित कर उन्होंने सूर और कबीर को मानों पुनर्जीवित कर दिया| ये आलोचनात्मक ग्रन्थ सर्जनात्मक कृतियाँ हो गई है| यह द्विवेदी की मेथा ही थी, जिसने इतिहास के पन्नों में विलुप्त होते कवियों को नई पीढ़ी के लिए अध्ययन और उत्सुकता का विषय ही नहीं, अपितु सामयिक भी बना दिया| 'कालिदास की लालित्य योजना' में उन्होंने लालित्य और सौन्दर्य तथा भावानुप्रवेश तथा यथा लिखितानुप्रवेश के आधार पर, कालिदास के रचना संसार के नये आयामों के दर्शन कराये हैं| आचार्य की यह सर्जनात्मक क्षमता पूर्ण आलोचना ही है, जिसने मेघदूत को 'मेघदूत-एक पुरानी कहानी' के रूप में एक नया और आधुनिक स्वरूप प्रदान किया|

कहानी

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कहानी संसार बहुत छोटा है| फिर भी अपनी छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से उन्होंने वर्तमान समाज की समस्याओं का चित्रण खींचने का प्रयास किया है| 'धन वर्षण' नामक कहानी में गुरु शिष्य संबंध का गहरा छाप हमें मिलते हैं| 'मंत्र-तंत्र' में द्विवेदी यह सिद्ध करते हैं कि दूसरे की भलाई कोई भी नहीं चाहता| 'व्यवसाय बुद्धि' नामक कहानी के माध्यम से कहानीकार कहते हैं कि उन्नति में भी हमें यह सोचना चाहिए कि हम ने किस रास्ते में चला था| यह आदमी का एक परम प्रधान गुण है जो इस समाज से नष्ट हो गया है| आचार्य द्विवेदी की मान्यता है कि जाति, कुल, देश, विद्या आदि सभी से ऊँचा है मानव का चरित्र| चरित्र अच्छा है तो हम उसका आदर करेंगे, बुरे चरित्रवालों से हमें घृणा का भाव होगा| इसकी पहचान 'बड़ा कौन है' नामक कहानी से हमें मिलते हैं| 'देवता की मनौती' में द्विवेदी की सांस्कृतिक दृष्टि प्रकट होती है| समाज में छुआछुत की समस्या को उजागर करनेवाली कहानी है 'अछूत'| वर्तमान समाज में नारी की दयनीयता का चित्रण भी प्रस्तुत कहानी से हमें मिलती है| 'प्रतिशोध'

नामक कहानी के माध्यम से लेखक कहते है कि परोपकार की भावना, भाई-चारा, अपनी गलती पर पछताने का मन आदि गुण मनुष्य को देवता बनाता है|

इस प्रकार देखे तो, छोटी होने पर भी द्विवेदी की कहानियों का आशय महान सिद्ध होता है|

कविता

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कवि के रूप में भी अपनी तूलिका चलाई है| द्विवेदी का रचनाकाल भारतीय स्वाधीनता संग्राम काल था| इसलिए उनकी कविताओं में भारत की आंतरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने का आह्वान और मुक्ति के लिए स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा देखा जा सकता है| 'मुर्शीदाबाद', 'लाडिली', 'रे कवि', 'आत्मा की ओर से', 'बोलो काव्य के मर्मज्ञ' आदि उनकी प्रमुख कविताएँ हैं|

विषय की विविधता अंकी कविताओं में पाई जाती है| 'ता के प्रति' नामक कविता का विषय प्रेम है| इसमें कवि ने अपनी प्रियतमा को 'दुनिया की देवी' कहा है| माया को स्वागत करते हुए उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा:-

"स्वागत स्वागत मेरी माया

मैं ने तुम में सबकुछ पाय|"[29]

द्विवेदी ने और एक कविता में संसार के प्रति अपनी आशंका को प्रकट हुए पूछते हैं कि 'क्या निराशा की धारा में बहता है संसार'?[30]

आचार्य द्विवेदी की अनुपलब्ध कविता 'मेरा स्वप्न' शांतिनिकेतन से 1941 जनवरी 8 को ब्राह्ममुहूर्त में लिखी गई है| कवि के स्वप्न में सारी प्रकृति रमणीय

[29] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 21

[30] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 23

होकर सामने आते हैं| नदी, सागर, पहाड़, आकाश, वन आदि धरती के कण-कण को छूकर ही उन्होंने प्रस्तुत कविता का सृजन किया है| इसके अंत में कवि निराश होकर कह उठते है:

"आज मेरा चित्त बहुत उदास है

कितना क्षणिक था मेरा स्वप्न!"[31]

इस प्रकार देखें तो पता चलता है कि द्विवेदी की कविताएँ विषय वैविध्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है|

अनुवाद साहित्य

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कुछ बंगला और संस्कृत ग्रंथो का हिंदी अनुवाद भी किया है| इनकी अनूदित रचनाएँ कुछ प्रकाशित है और कुछ अप्रकाशित| इसी प्रकार कुछ रचनाओं का उन्होंने अनुवाद किया और कुछ का छायानुवाद|

अप्रकाशित अनूदित रचनाएँ :- रविन्द्र नाथ टैगोर की 'चंचला', 'लाल कनेर' और मेरा बचपन' का इन्होने अनुवाद किया है| इन अनूदित रचनाओं की भाषा-शैली इतनी ललित है कि इनमें मौलिक रचनाओं जैसी रोचकता विद्यमान है| 'प्रबंध चिंतामणि' का भी उन्होंने अनुवाद किया है|

अप्रकाशित अनुवाद साहित्य :- द्विवेदी की दो अनुदित रचनाएँ 'पुरातन प्रबंध संग्रह' और 'प्रबंधकोश' अप्रकाशित है|

छायानुवाद

द्विवेदी की दो रचनाएँ छायानुवादित है| एक प्राचीन भारत का कलात्मक विकास और दूसरा प्राचीन भारत के कला-विनोद| वस्तुतः यह एक ही पुस्तक दो रूपों में उपस्थित हुई है| शान्तिनिकेतन की ओर से नृत्य गीतादी के अनुष्ठान के

[31] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 32

व्यावहारिक पक्ष का, प्राचीन काव्यग्रंथो में जो उल्लेख मिलता है उस पर दो व्याख्यान देने के अनुरोध को पूर्ण करने की दृष्टि से इस पुस्तक प्रारंभ हुआ था| इसमें द्विवेदी ने प्राचीन संस्कृत ग्रंथो, वेद, उपनिषद, स्मृति, नाटक, उपाख्यान सभी के आधार पर सामान्य जन के नित्य कर्मो, उत्सवों और अवसरों का सुन्दर वर्णन किया है| 'प्राचीन भारत का कलात्मक विकास' में छापे की अधिक अशुद्धियाँ थी| नई पुस्तक 'प्राचीन भारत के कला विनोद' उस कलात्मक विकास का ही परिवर्धित संस्करण है| इसमें अनेक नये विषयों को जोड़ा गया है|

सम्पादन साहित्य

द्विवेदी की बहुआयामी साहित्यिक प्रतिभा ने कोई क्षेत्र अछूता नहीं छोड़ा है| कुछ ग्रंथो और कुछ पत्रिकाओं का भी उन्होंने सफलतापूर्वक संपादन किया है|

संपादित ग्रन्थ :- (क) **संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो**:- इसके सह संपादक डॉ. नामवरसिंह है| इसका संक्षिप्त संस्करण सन् 1957 में प्रकाशित हुआ था| इनकी भूमिका द्विवेदी ने लिखी है| इसमें ग्यारह अध्याय हैं|

(ख) **नाथ सिद्धो की बानियाँ** :- द्विवेदी ने इस पुस्तक का संपादन सन् 1957 में किया था|

(ग) **अब्दुरहमान कृत संदेश रासक** :- इसका सम्पादन द्विवेदी ने डॉ.विश्वनाथ के सह-संपादन में किया है| इसकी भूमिका द्विवेदी ने लिखी है| उन्होंने इस ग्रन्थ को अपभ्रंश का महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना है|

संपादित पत्र-पत्रिकाएँ

द्विवेदी ने सन् 1941 तक 'विश्व भारती' का, कलकत्ता से सम्पादन किए थे और साहित्य अकादमी से प्रकाशित 'नेशनल बिब्लियोग्राफी' के सम्पादन निरिक्षण का कार्य उन्होंने सन् 1954 में संपन्न किया था|

जीवनी एवं संस्मरण

द्विवेदी ने टैगोर की जीवनी 'मृत्यंजय रविन्द्र' के नाम से लिखी है| इसमें गुरुदेव के महान व्यक्तित्व की झलक प्रस्तुत की है| उनके हृदय की उदारता, उनका मानव प्रेम, उनकी सत्य साधना के साथ साथ उनकी दिनचर्या का भी उल्लेख किया है| रचना के अंत में गुरुदेव की जन्म कुण्डली दी है| इस कुण्डली के विषय में द्विवेदी ने कहा है कि गुरुदेव की कुण्डली ने महापुरुष योग विलक्ष्ण रूप घटित होता है| इस जीवनी और संस्मरण साहित्य के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्मरण द्विवेदी ने लिखी है| 'पत्र' नामक प्रकाशन में उनके अनेक संस्मरण संगृहीत है| उन्होंने अपने परिजनों के नाम, भ्रमण करते समय, सागर तट और शैल शिखरों के सुन्दर संस्मरण पत्र लिखे है|

लेखक मूल रूप से समालोचक होता है| आचार्य द्विवेदी के इतिहास ग्रंथो में अनेक समीक्षा सिद्धांत स्थापित हो चुके थे, परन्तु उन्होंने स्वतंत्र समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे है| आचार्य शुक्लजी को हिंदी साहित्य का प्रथम समीक्षक और द्विवेदी को उनका पूरक समीक्षक मान्य किया जाता है| द्विवेदी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, किन्तु हिंदी के प्रमुख पक्षधर है, उनकी रचनाओं ने हिंदी साहित्य को प्रचुर संपन्नता प्रदान की है| द्विवेदी की समीक्षा दृष्टि बड़े व्यापक धरातल पर बनी है| वे प्राचीन पण्डित है, नवीन व्याख्याता है, बुद्धि के धनी है, सामाजिक शक्ति के आकांक्षी है, सौन्दर्य के उपासक है, भावों और विचारों की समृद्धि साहित्य में देखना चाहते है, किन्तु शब्दों के भी मर्मज्ञ और शिल्पी है, सृष्टा के व्यक्तित्व के अध्येता है और उसके समूचे परिवेश के सत्यों को जानने के आग्रही है| द्विवेदी का समीक्षा साहित्य निम्न प्रकार है|

सूर-साहित्य :- सन् 1934 में प्रकशित इस ग्रन्थ के सात अध्यायों में सूरदास के साहित्य का संगोपांग विवेचन किया गया है| इस रचना में द्विवेदी ने कृष्ण भक्ति

को महाभारत काल से उदित माना है| इसमें द्विवेदी ने लिखा है – "जो लोग दक्षिणात्य आचार्य के दार्शनिक और धार्मिक मतों का अध्ययन करके ही तुलसी और सूर के रहस्यों का उद्घाटन करते है, वे लोकमत के साथ अविचार करते है| जिस भक्ति साधना ने देव, मतिराम और पद्माकर को पैदा किया वह किसी आचार्य का ही साधना नहीं थी| आचार्य विशेष की दीक्षा तो उस पर रंग चढ़ा गई, मूल कुछ और ही था|"[32]

साहित्य का साथी:- सन् 1949 में प्रकाशित इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन 'साहित्य सहचर' के नाम से सन् 1965 में हुआ था| ऐतिहासिक सांस्कृतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करनेवाली इस रचना को छात्रोपयोगी दृष्टि से लिखा गया है| इस ग्रन्थ में द्विवेदी की समीक्षा पद्धति का सुस्पष्ट स्वरूप प्रकट हुआ है|

कबीर:- 1942 में इसका प्रकाशन हुआ| इस रचना में द्विवेदी की अनुसन्धान वृत्ति और विद्वता का रूप प्रकट हुआ है| कबीर की भक्ति साधना इस पुस्तक की महत्वपूर्ण बात है| कबीर द्वारा प्रयुक्त शब्दों की यात्रा और उनके अर्थ विकास को इस रचना में अनुसन्धान का आधार बनाया है| शून्य, निरंजन, नाद, बिंदु, राम, रहीम आदि शब्दों को द्विवेदी ने परिस्थिति के अनुसार अर्थव्यन्जक कहा है|

नाथ संप्रदाय:- सन् 1950 में प्रकाशित इस रचना में द्विवेदी ने गोरखनाथ को सांस्कृतिक स्रोत माना है| वे उन्हें केवल सन्त नहीं मानते, वरन बौद्ध, सिद्ध और परवर्ती काल के संतो के मध्य की कड़ी कहते है| इस रचना में द्विवेदी ने साहित्य समीक्षा के लिए कवि और उसके काव्य को समझने के लिए लोकजीवन की रुढियों, रीति-रिवाज़ों, धार्मिक परम्पराओं आदि का अध्ययन आवश्यक बताया है|

[32] सूर साहित्य, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 44

मध्यकालीन धर्म साधना:- इसका प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था| इस रचना में द्विवेदी ने सिद्ध किया है कि मध्यकालीन काव्य की प्रत्येक प्रवृत्ति, पूर्वकालीन प्रवृत्ति रूप है| उन्होंने कहा है कि भक्तिकालीन साधकों के शब्दों से परवर्ती हिंदी के भक्तिकाल को समझने में सहायता प्राप्त है|

सहज साधना:- यह सन् 1954 में प्रकाशित समीक्षा कृति है| इसमें द्विवेदी ने शैव, बुद्ध और शक्त साधकों का केन्द्र 'श्रीशैल' को बताया है| इस ग्रन्थ में मध्ययुगीन संतो की मानवतावादी भावना का विवेचन है|

मध्यकालीन बोध का स्वरूप:- यह सन् 1960 में प्रकाशित हुई थी| इस समीक्षा ग्रन्थ में आठवीं शताब्दी तक की रचनाओं की चर्चा की गई है| संस्कृत काव्य में बढती हुई लक्षण प्रियता और अपभ्रंश काव्य की सरल मोहकता का उल्लेख हुआ है| इसमें द्विवेदी ने अपभ्रंश भाषा-विषयक और अपभ्रंश काव्य संबंधी खोजपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये है| हिंदी भाषा के अध्ययन के लिए वे अपभ्रंश को समझना अनिवार्य मानते है| उनके अनुसार गोरखनाथ, शंकराचार्य से भी बड़े सांस्कृतिक परम्परा के रक्षक है| इस रचना में द्विवेदी ने लोक साहित्य के महत्व को प्रतिपादित किया है|

कालिदास की लालित्य योजना:- इसका प्रथम संस्करण सन् 1965 में हुआ| इस रचना में द्विवेदी ने कालिदास के काव्य की व्याख्यात्मक आलोचना प्रस्तुत की है| सृष्टि रचना के सिद्धांत की व्याख्या के साथ-साथ इसमें नारी सौन्दर्य, भावानुप्रवेश आदि विषयों पर भी विचार व्यक्त किये है|

साहित्य का मर्म:- तीन व्याख्यानों में संकलित इस ग्रन्थ रूप का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ था| इसमें समीक्षा के लिए सामाजिक मूल्यों को समझने का आग्रह किया गया है|

आचार्य द्विवेदी का रचना संसार निश्चित रूप से हिंदी के लिए अमूल्य और ऐतिहासिक निधि है| उनके उदार दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप उनकी रचनाओं में सहज ही एक भव्यता का दर्शन किया जा सकता है| इस भव्यता में सरसता का सन्निवेश है| यह सरसता उनके व्यक्तित्व की सरसता है, जो लेखनी के माध्यम से रचनाओं में उतर आई है| आधुनिक जीवन की विषमता और विरोधी स्थितियों का द्विवेदी के जीवन में भी बाहुल्य था| परंतु उनके मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण ही उनकी रचनाओं में शंका का स्वर बिलकुल नहीं दिखाई देता| मनुष्य जीवन के लिए ये रचनाएँ प्रकाश प्रदान करनेलायक है| विपरीत परिस्थितियों से लड़ने का साहस तथा मनोबल इससे हमें मिलते हैं| समाज के टूटते मूल्यों को हेय दृष्टिकोण से देखते हुए अपनी भिन्न रचनाओं के माध्यम से वे उसके पुरुद्धार की घोषणा करते हैं| क्रांति की भावना को अपनाते हुए द्विवेदी आधुनिक जनता को तथा साथ-ही-साथ आधुनिक साहित्यकार को सचेत कर, काम करने की प्रेरणा देते हैं| मनुष्य तथा समाज ही उनकी तूलिका का विषय बना है, इन्हीं विशेषताओं के कारण द्विवेदी का लेखन हिंदी साहित्य की अक्षुण्ण, अमूल्य और अतुलनीय निधि हैं|

.....ooo.....